UNIVERSAL LIBRARY
OU_182568
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6 | B57Aw Accession No. G.H. 1456

Author भट्ट, उदयशंकर।

Title अमृत और विष।

This book should be returned on or before the date last marked below.

अमृत और विष

उदयशंकर भट्ट

प्रकाशक
युनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस
इलाहाबाद

प्रकाशक
युनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस
इलाहाबाद

G.H 1456
H 81.6
G 51 A
1969

मूल्य २)

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

अमृत और विष

हिम-शृंगों से उच्च उमंगें,
यद्यपि साढ़े तीन हाथ तुम!
पोर पोर भूगोल तुम्हारे,
उड़ते रहे खगोल साथ तुम!

निद्रा से गाढ़ी अंधेरी,
एक श्वास में पीनेवाले!
आज हो गये इतने बेबस,
उठा न पाते जरा माथ तुम!

उठो उठो, शोणित की धारें,
रोक नहीं पायेंगी पथ का।
नभचुम्बी अंगार दहकते,
रोकेंगे क्या मनु के रथ को!

दो छोरों में रात छिपी है,
दो जीवन के बीच मौत है।
उसे पार करना ही होगा,
'इति' है दूर न देखो 'अथ' का।

विश्व युद्ध है, प्रकृति युद्ध है,
प्राण युद्ध है अरे प्रयोगी!
सदा तुम्हें तो बढ़ते जाना,
लड़ते जाना आत्म-नियोगी!

आँधी तूफानों से लड़कर;
लक्ष्य-बेध करना ही होगा—
पर्वा नहीं—शूल, बंबों से,
पटी हुई यह पृथ्वी होगी!

पर्वत हैं यदि खड़े स्वार्थ के,
इस प्रयोगशाला में हे नर!
भूखों के चीत्कार भर रहे,
यदि प्रयोगशाला में हे नर!

गूँज रहीं भूतों के घर सी,
ये रातें कंकाल चबातीं—
मौत नाचती काल डमरु ले,
डरो न फिर भी बढ़ो बढ़ो नर!

अमृत रखा सागर के तल में,
लहर लहर से लड़ना होगा।
बिन पतवार बिना नैया के—
खारे जल में बढ़ना होगा।

डूब गये! फिर उछलो साहस—
साथी को मत खोना मानव।
अमृत मिलेगा, गरल हटाओ,
हालाहल पी चलना होगा।

आज का जीवन यही है आज की है यही वाणी !

आज उठ अङ्गार से शृङ्गार कर मेरी जवानी। मुन्ना

कौन है उस पार जो मुझको जगाकर गा रहा है,
भग्न-वीणा के स्वरों में गीत भरता आ रहा है,
देख, नभ-अंगारिका के स्मय खिले निश्वास जागे,
ढूँढ़ते से पुतलियों के अश्रु में मधुमास जागे,

साँस में युग की सरकते आ रहे हैं प्रलय के घन,
साँस में भूकम्प भर संहारिणी के चपल नर्तन,
ले रहे अँगड़ाइयाँ सब चौंक चुप चुप आज खँडहर,
उठ रहे कंकाल-पंजर, से न जाने कौन से स्वर ?

सुप्त सदियों के अजाने ले रहे नग आज करवट,
और बढ़ने लगे सागर तोड़ अपने पुराने तट।
टूटते जाते निशा के स्वप्न से पिछले सहारे,
टूटते जाते तटों के ढूह से हट हट किनारे।

झाँकती संहार में नव-सृष्टि की कोई कहानी।
आज उठ अंगार से शृङ्गार कर मेरी जवानी ?

मैं नहीं हूँ प्यास, जो अति तृप्ति का वरदान माँगूँ,
मैं नहीं हूँ हृदय, जो स्वर से सुसज्जित गान माँगूँ,
मैं नहीं हूँ रूप, जो संसार से अभिमान माँगूँ,
कल्पना के पंख चढ़ ऐश्वर्य का आह्वान माँगूँ,

चाहता हूँ मैं न यौवन का सतत अधिकार मीठा,
चाहता हूँ मैं न यौवन का अधर-उपहार मीठा,

चाहता हूँ मैं जगत की जलन का उपचार मीठा,
यह कि यौवन सा सुखद संसार का संसार मीठा;

यह कि जीवन क्यों न मेरा दौड़ता उस ओर सरपट,
जहाँ जीवन पर न मानव विवशता का हँसे मरघट,
स्नेह से भर दूँ जगत को प्राण से अभिषिक्त कर दूँ,
मधुर मानव-पथ सजाकर अमर सुख से सिक्त कर दूँ,

प्राण में अनुराग भरती जाग री, मेरी रवानी!
आज फिर अंगार से श्रृङ्गार कर मेरी जवानी!

झोपड़ी में सो रहा कंकाल का लो हास जागा,
लो हृदय से ही हृदय को पीसता-सा त्रास जागा,
लाश को गतिमय बनाता प्रलय का निश्वास जागा,
जर्जरों में वज्र की भर शक्ति नव विश्वास जागा,

प्राण लेकर मुट्ठियों में सृष्टि का संहार जागा,
विजय लेकर हार में नव सृष्टि का आकार जागा,
बुझ न पायेगी जलन औ' बुझ न पायेगी पिपासा,
हो न पायेगी कभी संघर्ष रहते मूक भाषा,

सुखा डालो अश्रु जग के, वेदना का नाश कर दो,
अब न जीवन को किसी के इशारों का दास कर दो,
उठो, वह जग क्षार होकर पैर के नीचे पड़ा है,
उठो, कल सब आज बनकर देखता तुमको खड़ा है।

वरण करता स्वर्ग वह जो, मरण से डरता नहीं है,
मरण पाकर भी कभी क्या, वीर भी मरता कहीं है!

आज का जीवन यही है, आज की है यही वाणी।
आज फिर अंगार से श्रृङ्गार कर मेरी जवानी।

आज उबलते जग-कटाह में खौल रहे अरमान किसी के

आज उबलते जग-कटाह में खौल रहे अरमान किसी के।

पीड़ा के मरघट से उठते
यौवन के अंगार उचट कर,
गरम बगूलों की साँसों में
युग युग के अधिकार उचट कर,

पैरों के चिकने तलुओ से
आँधी के अम्बार उचट कर,
स्वप्नों के कल्पना-धूम से
उडते हैं शृंगार उचट कर,

आँधी के नीचे भूकम्पन
जिनमें सुप्त बवंडर जागे,
सौध-विभव के अन्तर से उठ
हँसते खँडहर आये आगे।

इतनी आग लगी है दिल में
धधक उठा है मानब-यौवन,
इतनी आग लगी है जग में
साँस साँस होते भूकम्पन।

अमृत और विष

ओ सुख में जीनेवालो, तुम क्या जानो तूफान किसी के—
आज उबलते जग-कटाह में खौल रहे अरमान किसी के।

भूताविष्ट गृहों सा यह जग
हँस हँस अपनी चिता बनाता,
विष पीकर लोमश बनने की
अथक चाह में मरने जाता,

प्राणों के पंजर-चरणों में
कल्पद्रुम के कुसुम चढ़ाता,
सागर की लहरों पर तिर कर
थिरक थिरक कर मंगल गाता।

हम अन्तर की आग जलाकर
अपना स्वर्ग बनाने आये,
हम अपने ही महानाश में
आशाएँ झुलसाने आये।

सर्वनाश की विषम-व्यालिनी के
फन पर नर्तन कर हँसते,
और बमों की धुआँधार में
देख रहे परिवर्तन हँसते।

अंजलि भर भर आज पिलाते नर को रक्त मसान किसी के—
आज उबलते जग-कटाह में खौल रहे अरमान किसी के।

तुम मानापमान का स्वर भर
चले दिग्विजय करने मानव,
तुम गौरव में प्राण पिरो कर
चले पराजय हरने मानव!

तुम सागर की लहरों पर चढ़
ध्रुव के चुम्बन-हित हो जाते,
तुम वीणा का स्वर साधनकर
साँखों से अंगारे खाते।

ओ! जागो यदि जाग सको तुम,
ओ! चेतो यदि चेत सको तुम।
दसों दिशाएँ सुलग उठी हैं
आग बुझाओ बुझा सको तुम!

'कल' न किसी का हुआ कभी है
जिसका आज न अपना साथी,
अंजलि में नर-रुधिर-पेय भर
साकी नाश पिलाने आती,

आशा के नीचे आँसू में डूबे जाते गान किसी के—
आज उबलते जग-कटाह में खौल रहे अरमान किसी के।

सैनिक की मृत्यु शय्या पर—

चल चूम रही है चरण विजय,
औ' मरण गीत जिसके गाता -
वह आज सो रहा क्षत विक्षत,
माँ की स्वतंत्रता का त्राता।

चुपचाप रो रहा अम्बर यह
आँखों में आँसू भर भरकर,
चुपचाप खड़े तरु लता कुसुम
चुपचाप नदी, रोते भूधर,

चुपचाप देखता रजनी के
वातायन से शशि झाँक झाँक,
देता हो मानों विजय तिलक
माथे पर मुक्ता बिन्दु आँक,

चुपचाप न जाने हँस-हँसकर
यह गाता है तिमिरान्ध कौन,
काली आँखों में झाँक रहे,
अगणित जग जिसके बन्द मौन।

अमृत और विष

चुपचाप सजाती रात इधर -
तारों की माला-मणि अमोल ,
चुपचाप प्रकृति की मूक साँस -
संध्या मुख भरती तिमिर घोल ,

पद-चाप हीन चुपचुप देखो
बहता समीर है, विघ्न न हो ,
कहता—सब मूक प्रणाम करो -
इसका मृदुचिन्तन भग्न न हो ,

इसने माता के चरणों में अर्पित की प्राणों की गाथा ।

इसकी उमंग के सब बन्धन
यौवन ने चितवन से खोले ,
इसके प्राणों के स्वप्न गए
बिजली के हासों से घोले ।

इसने बदली के बालों का
निज यौवन से श्रृंगार किया ,
इसने सागर की लहरों से ,
अपनी उमंग को प्यार किया ।

इसने हिम-गिरि के शिखरों को
चुम्बित निज आशा से जाना ,

अमृत और विष

इसने तारों के गानों को,
अपने गानों से पहचाना।

इसकी आँखों में खेला की
वारुणी लहर भर बेहोशी,
इसकी आँखों में खेला की
रूपसि की चंचल खामोशी,

यह वीर तुम्हारे लिए हृदय के
अरमानों के दीप जला,
माँ, स्वतंत्रता के हेतु खोल
सब बन्धन हो उन्मुक्त चला।

कह रहे खून के फव्वारे
हँस रहे घाव न्यारे न्यारे,
'यों मरनेवाले जिन्दा हैं'
यों मरता जा—जीता जा रे,

इसके शरीर का रोम रोम नवजीवन नद भर भर लाता।

बिजली ने कड़क; गरज घन ने,
बादल ने बरस प्रणाम किया,
तरुओं ने हिल, कलियों ने खिल,
कुसुमों ने मिल सम्मान दिया।

बच्चे भी किलक पुकार उठे,
मानों सैनिक के चरणों पर;
गोदी से निकल मचल माँ से—
'जाने दो हमको उस पथ पर'।

सब ओर उठी ध्वनि एक यही
जीवन है यही सफल जीवन,
केवल आँचल से रुक धक धक -
पत्नी ने कहा—'कहाँ जीवन!'

मोती की बूँदों से हँसकर
माता कह उठी—यही जीवन!
गर्वित उद्दीप्त पिता बोला—
जीवन है यही महाजीवन!

जीवन ने उत्सव देखे हैं
जीवन ने आँसू भी देखे,
पर कौन याद युग नाप सकी
मर कर जिसने जीवन देखे!

हैं आग लगाने वाले तो
पर बुझा सके ऐसे कोई,
हैं मार मिटाने वाले तो
मिट जिला सकें ऐसे कोई!

इस स्वतन्त्रता की वेदी को बिरला ही वीर बना पाता।

निर्माण किया नवयुग तुमने,
निर्माण किया नव नव जीवन,
चरणों के चिह्न मिटेंगे क्या
बलिदान गगन के तारक घन !

यह भूमि पवित्र हुई तुमसे
आँचल का दूध पुनीत हुआ,
माँ की आशाएँ सफल हुई
बलिदान प्राण का गीत हुआ।

तुम स्वतंत्रता के दीवाने,
बलिदान सजाकर लाये थे,
युग की साँसों के चढ़ ऊपर,
सम्मान सजाकर लाए थे!

सचमुच तुमने ही पहचाना,
यौवन का एक मोल जाना,
प्राणों के बदले आजादी—
मिट मिटकर आजादी पाना,

ये कोटि कोटि पण्डित, ज्ञानी,
तुम पर न्यौछावर हैं सैनिक!

अमृत और विष

ये कोटि कोटि धन के स्वामी,
तुम पर न्यौछावर हैं सैनिक!

तुम कवि की अन्तस्फूर्ति बने,
कविता के प्राण विमान बने।
तुम फूलों के उल्लास बने,
उल्लसित जगत के गान बने!

सागर तल अम्बर तारक से कण-कण से गीत यही आता।

ओ दानी, भर दो आग अमर,
मेरे मन में आजादी की।
वह मुक्त बने, अति मुक्त अवनि,
सब ओर गूँज आजादी की।

गरजे बादल से आजादी,
बिजली में स्वर आजादी का।
कण-कण से देश पुकार उठे,
स्वर-तार उठे आजादी का।

लोथों पर लोथ गिरें कट कट,
फिर भी धुनि उट्ठे एक यही,

अमृत और विष

हम आजादी के दीवाने
परतंत्र रहेंगे कभी नहीं।

हैं प्राण अमर बलिदानी के,
रे नहीं छीनता काल उन्हें।
वे अजर, अमर, उन्मुक्त अचल,
इतिहास सजेगा माल उन्हें।

मस्तक पर धर कर माँ की रज,
आगत युग के तुम त्राण बने,
सब ज्ञान बने, विज्ञान बने,
सौंदर्य कला के प्राण बने,

भर दिया मृत्यु से राशि राशि,
नवजीवन जग के शुद्ध हुए,
तुम चले मुक्त गगनांगण में,
हम चले युद्ध सन्नद्ध हुए।

कब रह सकता है दास देश
संदेश अमर जब सुन पाता—
चल चूम रही है चरण विजय
औ' मरण गीत जिसके गाता—

वह आज पड़ा घायल सोता माँ की स्वतंत्रता का त्राता।

सैनिक

(एक मनो वैज्ञानिक-चिंतन)

[बेलजियम पर आक्रमण के बाद संग्राम में एक सैनिक लाशों के ढेर में पड़ा है; बर्फ़ गिर रही है झिर-झिर-कर। उसका सब शरीर गोलियों और बम के आघातों से जर्जर है। वह किस तरफ़ का कौन सिपाही है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। वह एक सैनिक है, वीर सैनिक, जो गोलियाँ खाकर जी रहा है; अन्तिम श्वास ले रहा है। वह पहले बेहोश था, अब जागा है।].

मैं कौन हूँ मैं कौन ?
मैं बोलता या मौन ?
क्या साँझ है सब ओर ?
चीत्कार कैसा घोर ?

यह कौन मेरे पास—
हा सत्य यह तो लाश ?
यह 'जौन' है या 'केन' ?
यह नहीं यह तो 'स्टेन'।

यह मर गया क्या हाय !
कैसा पड़ा असहाय,
है नहीं हिलता अंग;
क्या हो गया सब भंग ?

यह जगत हाय अलीक !
मैं जी रहा क्या ठीक ?
मैं मर रहा हूँ हाय,
मैं जिया क्यों निरुपाय !

पीड़ा बड़ी शून्यांग !
क्या हो गया विकलांग !
उठता न मेरा हाथ,
क्या कट गया है नाथ !

क्या हुआ मेरा सीस।
मानो दिया हो पीस !
है खून, क्या यह खून !
दी देह किसने भून !

क्या टाँग भी है साथ !
हिलता नहीं क्यों माथ !
हिम वृष्टि रे, हिम वृष्टि !
सब श्वेत रक्तिम सृष्टि।

है कुछ न कोई भिन्न,
है नहीं नर का चिह्न !
हा क्या करूँ, हा पीर,
कैसा हृदय गत धीर !

मैं कौन हूँ मैं कौन,
मैं बोलता या मौन !
सब रक्त से है स्नात,
सब श्वेत रक्तिम गात,

मैं क्या करूँ, हे ईश !
यों ही मरूँ भर टीस !
वह भरे गहरी याद
कहने लगा सविषाद।

× × ×

वह था नहीं मध्याह्न,
वह था कहीं अपराह्न।
भू भार - सा दुर्दान्त,
बीभत्स रण का प्रान्त।

चीत्कार पूरित व्योम,
ध्वनि धुन्ध दावातोम।
नभ फाड़ती थी तोप,
चिंघाड़ती पग रोप।

बारूद से नभ पूर्ण,
रह शस्त्र करते घूर्ण।
भू-भाग वह शव सृष्टि,
मानों हुई शव वृष्टि।

उस समय आया याद,
कैसे हुआ बरबाद।
बोला नया स्वरढाल,
ले स्मृति नई तत्काल।

× × ×

मैं हूँ कहाँ—भू पर यहाँ?
क्या सब हुए—क्या गत हुए!
कैसा विगत, कैसा सतत,
कैसा अरे, क्या सब मरे?

मैं कौन हूँ ! क्या मौन हूँ ?
भागो अरे, भागो अरे,
सँभलो बढ़ो, ऊपर चढ़ो
वह सामने हैं, कुछ जने

× × ×

उठता न सिर, गिरता रुधिर
क्या हाथ भी है, साथ भी !
हा पीर अति, यह वीरगति ?

× × ×

यह क्या चला, यह क्या लगा ?
कैसा तिमिर, सब ओर घिर,
प्रलयान्त रव, उद्भ्रान्त भव,
बौछार - सा, अंगार - सा,

हुंकार - सा, संहार - सा
क्या गरजता, क्या लरजता,
क्या काँपता, क्या मापता,
यह क्या लगा, मैं गिर गया !

सब क्या हुए, हम क्या हुए !
सब शान्त था, मैं भ्रान्त था !

× × ×

हम सब चले, लगते भले,
सब अस्त्र ले, सब शस्त्र ले,

बन वीर सब, बन धीर सब,
निज देश-हित, उद्देशहित,
सैनिक अभय, ले बल हृदय,
बढ़ते हुए, चढ़ते हुए,

अड़ते हुए, लड़ते हुए,
हुंकारते, संहारते,
दल चीरते, बलवीर-से,
परिवार तज, सब शस्त्र सज,

था हर्ष अति, उत्कर्ष-गति,
साहस-अटल, साहस-अचल,
थी तीव्र गति, थी तीव्र मति,
उद्गार भर, संहार भर,

आकाश में, अवकाश में,
कुछ यान में, बल प्राण में,
सब भूल जग, सब एक पग,
अड़ते चले, बढ़ते चले,

आँधी इधर, आँधी उधर,
चीत्कार था, संहार था,
सब ओर नर, सब ओर स्वर,
संघर्ष था, उत्कर्ष था,

तोपें इधर, तोपें उधर.
थीं गरजतीं, थीं लरजतीं,
संहारतीं, फुफकारतीं,
मानो धरा बम उर्वरा।

बारूदमय औ' धूम्रमय,
ऊपर गगन, कर उद्वमन,
बम्बार्ड कर, औ' मृत्यु भर,
बढ़ती चलीं, चढ़ती चलीं,

यह रक्त-पथ यह रक्त-पथ!

× × ×

हत ज्ञान वह अज्ञान!
निर्बल, अशक्त, अजान,
चुप हो गया निःशक्त,
मुख से बहा कुछ रक्त!

बोला नहीं कुछ देर,
डोला नहीं मुँह फेर,
दम किन्तु था श्रम व्यस्त,
मानो पड़ा आश्वस्त;

अनगिनत कौए, चील,
मड़रा रहे पर ढील,
उन्मत्त से अनुरक्त,
नर मांस के अति भक्त,

मड़रा रहे घिर घोर,
लड़ लड़ झगड़ सब ओर,
था विहग पूरित व्योम,
रोमांच रोम प्ररोम।

मानों युगों की प्यास,
हो गई पूर्णोल्लास,
थे कहीं टैंक विशाल
ऊपर उठाये भाल।

अनगिनत था सामान,
अनगिनत नर बेजान।
था कहीं लाश—पहाड़,
नर कहीं चिपके झाड़।

कोई पड़े मुँह फाड़,
कोई अड़े झंखाड़,
बारूद का ले वेग;
कोई गगन से रेंग,

थे गिर लटकते वृक्ष,
मानो जड़े सित रिक्ष।
कोई उड़े ले मींच,
आकर टँगे तरु बीच!

आकाश - यान महान,
नभ से गिरे असमान।
सब ओर नर - संहार,
सब ओर रक्त अपार!

आई निशा विकराल,
मानो बुलाये काल,
था तिमिर ध्वान्तागार,
मानो प्रलय साकार,

उस पर शिशिर हिमवर्ष,
भरने लगा उत्कर्ष।
सब श्वेत तिमिराकार,
सब तिमिर प्रेताकार!

× × ×

सैनिक जगा भर आह,
सब देह में था दाह।
आँखें खुलीं कुछ बन्द,
कुछ ज्ञान मंद अमन्द।

उच्छ्‌वास से उड़ सिर्फ़,
उड़ गई मुँह से बर्फ़।
मैं कौन हूँ क्या 'जान',
क्या सत्य सैनिक जान?

बाहर अँधेरा खूब,
भीतर हृदय में ऊब।
पीड़ा अनन्त, अपार,
कैसे सहूँ यह हार!

वह स्निग्ध, सुन्दर मूर्ति,
चिर स्वप्न की मधु मूर्ति।
चिर सहचरी, चिर प्यार,
सब स्वप्न-सी साकार!

अमृत और विष

पीयूष-सी दो आँख,
शशि-सी मधुर दो फाँक।
मेरे हृदय का गान,
साकार बनता जान।

भरकर उसी में प्राण,
वह बनी मेरी त्राण।
चिर पिपासामय वक्ष;
चिर प्यार पर्ण सुदक्ष।

क्या मिल सकेगी हाय?
मैं हूँ पड़ा असहाय!
क्या सुत सलोने सीप,
वे स्वर्ग के दो दीप?

जिनमें हँसा सुखसाज,
जिनमें प्रिया की लाज।
वे प्राण के आधार,
वे स्वर्ग के अधिकार।

वे विश्व के उद्‌गार,
वे हृदय के उपहार,
क्या मिल सकेंगे आज?
क्या हो सकेगा काज?

अब नहीं, क्या आस,
अब नाश का उल्लास।
सब छोड़ आया प्यार,
सब तोड़ आया द्वार।

सब बन्द है अब राह,
जीवन क्षणिक है आह!

× × ×

वह देश मेरा देश,
जिसके लिये मैं शेष!
जाने हुआ क्या आज,
जाने गई क्या लाज!

क्या शत्रु लेगा छीन,
करके उसे स्वाधीन।
मैं जिया जिस उद्देश,
क्या छिना मेरा देश!

क्या वह समुज्ज्वल प्रान्त,
सब विश्व से जो कान्त।
सब आज अपना छोड़,
स्वातन्त्र्य से मुँह मोड़।

परतंत्र होगा हाय,
कैसा हुआ असहाय!
मैं कर न पाया काम,
लेता मरण विश्राम।

अब श्वास लेना भूल,
अब और जीना शूल।
पर कौन जाने कौन,
अरि हो गया हो मौन!

मैदान तज मुख मोड़,
वापिस गया सब छोड़!
फिर तो महा उल्लास,
फिर सफल सारी आस।

फिर सफल मेरी मौत,
फिर सफल जीवन पोत।
फिर सफल मेरी हार,
फिर सफल बम्ब प्रहार।

फिर सफल जीवन मंत्र,
यदि देश में स्वातन्त्र्य।
जिसके लिए कर युद्ध,
हम हुए पृथ्वी रुद्ध।

वह देश जीता देश!
उल्लसित मन सविशेष।
कुछ भी नहीं परवाह,
जो मृत पड़ा मैं आह।

आनन्द का अतिरेक,
मैं क्यों न जीऊँ देख!

× × ×

है यह कहाँ का शोर -
जो उठ रहा सब ओर ?
फिर गगन भेदी गीत -
सुन हुआ सैनिक मीत।

यह नहीं मेरा गान -
इस देश का सम्मान !
हा, शत्रु हो सानन्द,
रचते विजय के छंद !

अब मैं न जीऊँ और,
क्या टूटते तरु बौर !

× × ×

पर नहीं—क्या हम एक !
क्या नहीं हम सविवेक !
कोई नहीं है शत्रु,
हैं सभी मानव मित्र।

अविवेक है अज्ञान,
है स्वार्थ का सम्मान।
जो लड़ रहे हैं आज,
लेकर अनोखे काज।

लेकर विचित्र विचार,
लेकर विचित्र पुकार,
सबके लिए उपहार,
सबके लिए संसार,

यह भू सभी की भोग्य,
हमको यही क्या योग्य?
धन ही नहीं है सर्व,
मानव अखण्ड, अखर्व,

हा खेद, नर की भूल,
नर को बनी वह शूल।

× × ×

मैं मर रहा हूँ आज,
जग की छिपाये लाज।
आई हँसी उस काल,
झाँका गगन शशिभाल।

फिर उठी हिचकी एक;
सैनिक हँसा नभ देख!
ऊपर हँसा विधु-हास
नीचे मरण उल्लास।

बन्द करो द्वार

बन्द करो द्वार—
आ रही है बदबू तुम्हारे इन महलों से
उठती है सड़ायँद बुसे हुए फूलों की,
जिनमें न है सुगन्ध आज अब कहीं कोई;
नालियों में कीचड़ है;
कमरों में अगर धूप की हैं टूटी डएठलें ही,
बुझी हुई, सीलन से दरी भरी,
रोम हीन कालीन।
बिखरे हुए लवेंडर, क्रीम और पाउडर की—
पुरानी सी गन्ध मन्द,
आ रही है दुर्गन्ध—
तुम्हारे इन कपड़ों से पिए से पसीने की,
अएडी के तेल से मिली हुई नीम की सी;
और जो कि बार बार की है नाक साफ तुमने,
शर्ट के कफों से तथा दूध के हैं दाग वहाँ,
गीले गीले, मक्खियों का ले कर गिरोह!
हो रहा है मोह अरे, थेगड़ी की अचकन पर
अब भी कि जब शुद्ध यद्यपि है सस्ता पट,
किन्तु वह सस्ता ही सुलभ सदा होता और
होता है समस्त का भी ध्येय उसमें ही पूर्ण!
जीर्ण का न होगा पूर्ण कभी नव उद्धार
बन्द करो द्वार—

बाँचता है वेद, उपनिषद्, गाथाएँ कोई,
नाराशंसी औ' पुराण याकि जिन्दावस्ता, बाइबल ओल्ड और न्यू
कुरआन झुक झुक
अपने ही ध्यान में,
या कि जोर जोर से सुनाने को है उत्सुक,

और तुम्हें बाँध लेने को है सन्नद्ध, क्रुद्ध,
एक भी न पग ताकि हिल सको, डुल सको,
एक भी विचार हो न भिन्न—
उस पन्था से ही, सीमा से
विचार से हो जिसकी कि सीमाएँ—
आज भी हैं बाँधती जगत प्ररूढ धन,
और प्राचीन। और जिनकी नीवों में
जीर्ण तर्क, प्रतिहिंसा, घृणा, व्यंग्य, नीति, वक्र—
स्वार्थ, भेद, भूरि भूरि पुञ्ज अभिमान ज्ञान।
है न जहाँ कोई भी, कहीं भी वर मानवता का
मानव की कामना का विज्ञ
और पूर्ण ध्येय,
पूत औ' पुनीत लक्ष्य,
लक्ष लक्ष परहित में निहित संहार।
बन्द करो द्वार—

सुनो सुनो खोल दो वे खिड़कियाँ औ'
दरवाजे, स्काईलाइट, वेण्टिलेशन
भर जाने दो प्रकाश
सूरज है उग रहा मत डरो,
पूरब से या कि वह पच्छिम से,
उगने दो, बढ़ने दो, भरने दो,
नव हास, नव विलास,
हर्ष हर्ष-प्रति वर्ष।
तोड़ दो कँगूरे सब गुम्बद औ' मीनार।
खोल दो द्वार—

आज सब टूट गईं चीनी की रकाबियाँ वे
मिर्च और प्याले मैले, पीतल के, काँसे के,
ताँबे के पात्र छिन्न।

जूठन है सड़ा हुआ अन्न औ' मिठाइयाँ हैं,
लड्डुओं का भूरा, बुसी दाल-भात केक-टोस्ट,
खाके सब छोड़ गए हैं बुजुर्ग अच्छा अच्छा,
बची अब जूठन है खाओगे क्या उसे हीन !

फैला है हैजा, प्लेग तपेदिक, खाँसी अरे,
क्योंकि सड़ा है समाज का विधान ।
ढाँचा ठोक ठोक कर बना मत उसे नव
है पुराना पुराना ही और नया नया ही है,
नए औ, पुराने को मिला कर, घोल घोल
मत उसे भ्रष्ट करो, मत नव नष्ट करो,
गढ़ो गढ़ो नई ईंट, नया नया गारा करो,
खड़ा करो, बड़ा करो एक नव-भव्य-गृह
जीर्ण न आदर्श वहाँ, शीर्ण न संघर्ष वहाँ,
नव हर्ष नव वर्ष—
नया यह व्यापार !
बन्द करो द्वार !

मूढ माइथोलोजी, व्यर्थ आइडियोलोजी,
रहने न पावे सड़ा देने को विचार नर—
वहाँ कोई मूढ-ग्राह, रूढ़ियों का हो प्रवाह,
स्वार्थ के स्तरों में छिपा व्यर्थ का अहंकार ।
बन्द करो द्वार—

पैदा हुआ नंगा मैं, निर्विकार निर्लेप
ऊँच-नीच वर्ण-जाति धर्म औ' समाज हीन
शुद्ध-बुद्ध राग-हीन, प्रभा-हीन, दम्भ छल छोड़ तोड़,
मानव का एक प्रण मानव ही बनने को
मानव समानता का लिए पूर्ण सुविचार !
खोल दो वे सब द्वार—

बंगाल

तुम कहते हो लिखूँ, उस बंगाल पर,
रामकृष्ण प्रान्त पर,
बंकिम प्रदेश पर,
पावन नितांत पर,
शस्य भूमि वेश पर,
जिसकी विशालता में कंगाल नाच रहे,
और सब सड़ चुके,
हाड़ सब गल चुके,
जल चुके जिसके स्रोतस्विनी से—
कण कण, सूख, सूख
नाश-अट्टहास के जमघट में मरघट से—
रोगों में,
अकाल-काल-नृत्य में,
मृत्यु-महामृत्यु में,
संस्कृति के,
प्रतिभा के,
ज्ञान के प्रदीप सब,
लघु लघु—
शोभन !

× × ×

तुम कहते हो लिखूँ, जहाँ है अनंत-हास उल्लास
राशि —राशि—
खेलती सी;

नारिकेल, ताल, हिंताल,
कल-तुंबरी के, खर्जूर, कदली के,
फैले हुए तरु पर,
दे रहे हैं श्री न अरे—
जीवन भी,
जीवन का रस भी,
अमर अमराइयों में,
सर प्रति छाया में,
तालों में, तटों पर,
खाइयों में,
खन्दकों में,
शिखरों औ'
ढलान में,
और मैदान में।

हैं अनंत पुष्प पुंज—
कुंज कुंज,
मंजु-मुक्त,
रस से सुवासित औ'
अमंद मंद मकरंद,
माधवी से,
चम्पा से,
चमेली से,
गुलाब से,
रजनी की रानी
शुभ्र रजनी सुगंधा से,

प्राणियों के हर्ष पर,
मानस उत्कर्ष भर,
झूमते हैं चूम चूम,
सुन्दर समीर नीर।

फूलती है कविता—
मनोज्ञ रस भरिता सी,
सरिता सी,
अथ च भूमि हरिता सी,
नवीन प्रणवाहिनी,
काहिनी कथाएँ लिये,
और सभी अंग अंग,
संग संग भारती के,
मंजुल प्रदेश में,
निःशेष पद पद,

× × ×

किन्तु अरे व्यर्थ है कहानी,
उस पूर्णिमा की,
पूर्णिमा के चाँद की,
ग्रहण ग्रस्त,
त्रस्त सी;
अस्त व्यस्त है समस्त,
आज सब गुरुता भी,
महिमा भी,
गरिमा भी,
अंग अंग छवि मंद,

साँग वंग रमणी की,
लौटता है आज वहाँ,
भंख, भूख दानवी का,
मृत्यु महाऽमानवी का,
अट्टहास-त्रास कर,
जिसका है खरतर,
वज्र निर्घोष स्वर,
व्योम का कँपाने वाला,
पिण्ड ब्रह्माण्ड के,
हृदय झकझोरता सा,
तोड़ता कपाट पट,
निष्करुण निष्करुण,
निदारुण ब्रह्मा के,
विष्णु और शिव के;
रक्षक जो कहलाते,
भय खाते नहीं,
हाय हन्त!
कहाँ है कराल काल व्याल का—
अखंडवास,
पिसते हैं जिसकी,
सतत वज्र दाढ़ों में,
सुन्दर,
सुकुमार,
बालक औ' बालिकायें,
वृद्ध और युवाजन,
नारियाँ अनेक—

शुभ्र स्वर्ग सुकुमारियाँ भी,
भूख से,
निरस्त-बल,
अन्न का है दाना जिन्हें,
अप्राप्य ख कुसुम !

× × ×

आँखों देखी कहता हूँ—
कल्पना नहीं है यह,
देखे मैंने फाड़ फाड़—
नेत्र निज विस्मय से,
शोक, आश्चर्य से,
अंतर के द्वारों से—
भुखमरे दीन हीन,
अनादृत औ' अपृष्ट,
रोगी और कँगले,
साथ साथ सोते हुए,
हाथ हाथ दूर पर,
सटे वे अनेक जन—
लाशों के ढेर से,
पड़े हुए, सड़े हुए,
औंधे मुँह, भग्नबल, निश्छल,
करवट लिये हुए,
विकृत वीभत्स तर,
भयद विकृत मुख,
दंत पंक्ति—

जिनकी थी,
निकली, निपोरती, निरवलंब,
बाहर को;
पेशाब, पाखानों से,
सने हुए एक ओर,
ओर पास माँगते भी देखे
दाँत फाड़ फाड़
हाथ बढ़ा—
'किछु भात,
'किछु भात'
'भात दाओ'
'भात दाओ'
'अन्न दाओ'
महाजन
'दीनबन्धु'
'अन्न दाओ'
'प्राण दाओ'
'प्राण दाओ'
'गिगियाते'
बिलखाते,
रोते औ' बिसूरते भी,
मरते नहीं थे जो।
एक मुट्ठी अन्न को जो टूटते हैं गिरकर,
गिद्धों से, चीलों से, कुत्तों से, बिल्लियों से,
कुत्तों से लड़ते हैं छीन छीन कण कण।
और हाय, बीनते हैं—

पेशाब से भी चुन,
भात की किनकियाँ !
फूले हुए पेटवाले,
सींक जैसी टाँग लिये,
वे अनंग,
वे अपंग,
वे समस्त कंकाल,
बंगाल देश के !

× × ×

किन्तु धन्य मानव !
तुझे भी धन्य शत शत,
वन्य से अधम कीट,
ए रे, नर नारकी तू,
माँगता है रतिदान,
उस कंकालिनी से,
गुप चुप, छिप छिप,
तारिका प्रकाश में,
सरक सरक चुप,
आगे बढ़, पीछे हट,
मुरझाए, सूखे हुए,
निचुड़े हुए से,
उस दारुण प्रताड़िता के,
विधि विनिपातिता के,
पकड़ के स्तन द्वय,
योनि को लगा के हाथ !

जागती है जब वह,
देता तब आने चार।
किन्तु माँगती है वह—
'अन्न दाओ, अन्न दाओ'
भातदाओ ए ईं की
स्वप्न में भी जिनको है—
अन्न ही अलभ्य वस्तु,
उनकी पुकार सुन,
रोता नित नभ से है—
मानों वह दीनबन्धु,
विजड़ित,
स्तब्धबुद्धि,
मूढ़ मति,
ईश्वर !

अतिकाल पीड़ित क्षुधा से,
जब खाते नर,
अन्न भी अरुचिकर,
ठूँस ठूँस पेट में ही,
वमन भी होती उन्हें,
चाटते भी देखी वह—
अरे, इन प्राणियों को !
और उसी पथ पर,
मोटर औ' रथ पर,
खिलखिल हँसते भी,
देख जन दौड़ते भी—

जिनको नहीं था ध्यान रंच भर इनका !

उनके विलास में न कोई,
उपहास रहा,
पेट को फुलाये हुए,
मूछों पर ताव देते,
लेवेण्डर सुवासित,
क्लीन शेव्ड
हेट, कोट, पतलून, टाई से लसित थे।
एक ओर स्वर्ग देखा,
एक ओर रौरव,
एक उसी नगरी में,
एक ही डगर पर,
एक ही मनु के पुत्र,
भिन्न-भिन्न वेश में !

× × ×

रक्तहीन, मांसहीन, प्राणहीन, बलहीन,
पड़े फुट पाथ पर,
नरक के पिण्ड वह,
चिल्लाते, डकराते, रोते सब दिन रात,
भात दाओ, अन्न दाओ, अन्न दाओ,
दीनबन्धु ! ...

× × ×

दाँतों से काट काट, अँगूठे को क्रोध में ही,
बूँद बूँद छिड़काया,
और लौट आया स्तब्ध, मूढ़, जड़ मैं असंज्ञ !

मौत की मंज़िल

पहले न व्याधियाँ थीं, केवल थीं बिजलियाँ, भूकम्प, जरा,
अनावृष्टि, अतिवृष्टि, ज्वालामुखी, नग्न व्याल ;
सागर में डूबने, पहाड़ से गिरने पर
भूख, भूरि झंझा से, वृश्चिक और व्याल से भी—
सिंह विकराल से आती थी मृत्यु मृत्यु—
महाकृत्य जीवन में, जीवन के प्राण में
उठाती हुई अति भार, बार बार साह्लाद ।
आकार लिये एक आदि हीन—अंत दीन ।

× × ×

फिर आई मृत्यु, नवयौवन के गर्व में भरी सी मंजु नारी के,
नर के–विमोहन से,
मद से,
सुहास से,
मृदुल कटाक्ष से,
छन छन; श्वानों को लड़ानेवाली कुतिया के—
हाव भाव वक्र सम—
धीरे धीरे फैल गई,
भूमि पर मानस की, मानव के उर में ;
आबद्ध दृढ धारणा सी,
क्रोध ले—
विरोध लिये—
जन प्रतिशोध लिये—
और नव नारी के स्तनों पर, योनि पर,
आलिंगन चुम्बन पै

एक अधिकार लिये शाश्वतिक दृढ़ तर
ताकि कोई देख सके नहीं कभी आँख फेर !

× × ×

फिर आई मृत्यु नया रास सा रचाती हुई
आपस के युद्ध, फूट, क्रोध के कलेवर में
हिंसा के फूल चुन विषमय, असमय,
राज्य की प्रभुतामयी एषणा के व्याल भूरि,
मानस के अन्तर में भाव सा जगाती हुई,
ऐश्वर्य का भी मद औद्धत्य का—
बल का महान अनुराग लिये,
जागृति में, जागृति के स्वप्नों में,
चलने में, दौड़ने में
दौड़ने के अंतर में—
रूप अपरूप कुछ—
कुछ भी न जानती सी वह—
थी प्रतीक एक लिये बल आत्मदर्प का।

केवल प्रतीक लिये अपनी ही चाहना का—
जो कि थी अमोघ भूरि भूमि नभ सी महान-व्याप्त—
ओर छोर नहीं जिसका था, कहीं कोई;
जिसका था कहीं नहीं अन्त अविराम गति एक वह एक !

अविराम प्यास लिये राजाओं, सामन्तों अथ
सेनापति, सैनिकों के उर में प्रशस्त व्याप्त
दीप्त अग्नि शिखामयी एक वह एक !

× × ×

फिर आई मृत्यु उन वणिकों के स्वार्थ छिप
जन का विधान जिन्हें,

कर न कभी भी सका संतुष्ट संतुष्ट !
साधना से अर्थ की अनर्थ मूल भरकर !
आज अर्थ नाचता है वणिकों के हास में—
झंझोड़ता प्रशान्त महासागर की लहरों को,
जिन पर तैरते असंख्य पोत चीरते—
विदीर्ण कर छतियाँ उन्नत साहित्य की,
उन्नत समाज की, समुन्नत जातियों की;
प्रेम की परंपरा के शान्ति के किनारे काट—
और नष्ट भ्रष्ट कर सभी भव्य भावना को,
जिन्हें बड़े ध्यान से, बड़े बड़े ज्ञान से
मंत्र पूत ज्ञान वाले पूर्वजों ने रचाया था—
जहाँ वह मानस को देती थी; अपूर्व शान्ति कान्ति पुंज।

रौंध के कुचल कर पल पल फाड़ पन्ने—
आज बढ़ा जा रहा है यह व्यापारी दल—
साम्राज्यवाद और फैसिज्म के नाम पर—
पीसने को दलितों को, दुर्बलों को, दीनों को—
दासों को; बनाए उन्हें
रखने को वशवर्ती जन्म जन्म अनुचर !
आज उस व्यापारी के इंगित पै नाच रहे,
सेनापति, सेनाएँ, नाचता है सत्य, धर्म,
ईश्वर भी नाचता है,
वाक्यों में भर भरभर अनुप्रास, ओज भर, भाव गांभीर्य भर
शब्द शब्द जाल बुन।
मृत्यु ने भी झाँक उस मार्ग को ही पकड़ा है—
जिसमें है मानव का ताण्डव अखण्ड वक्र—
अरे आज देखो तो !

'रिफयूजी'

(युद्ध काल में विध्वंस के समय सब लोग प्राणरक्षा के लिये भाई, बन्धु, माता, पिता, पुत्र, स्त्री सभी एक दूसरे को छोड़कर भागे जा रहे हैं ; उसी समय का एक चित्र । इसमें गर्भिणी पुत्र वधू के साथ उसका बूढ़ा श्वसुर भी उसी अवस्था में प्राण बचाये भागा जा रहा है ।)

धूम धूलि बम्ब-वज्रपूर व्योम रोम-रोम,
धरा भी थी वैसी धुन्ध-दावा का अखण्ड रोष,
भरे हुए पूर्ण घोष ,
धायँ-धायँ तोपों की ,
प्रकम्प प्राण हीन तोष ;
मानव थे सभी खिन्न,
भय और साहस,
विवशमति अति-गति,
नाचता हो काल मानो
जीवन से खेल-खेल ।

खेल-खेल आशा से,
उमंग से, सुदैव से,
कुदैव मानों छीन-छीन भूतियाँ,
विभूति खण्ड । वह्नि लगती थी-
कहीं और फटते थे कहीं, सौध-खण्ड
फैलाये प्रलय प्रचण्ड, वज्रदण्ड—
चण्ड चूड़, गिरा के अपोह व्यूढ
ब्रह्म-पाश लिये हाथ
कण-कण तोड़-तोड़,
छोड़ता न हो किसी को ।

जोड़ता न हो किसी को
पीसता ही जाता हो अनंत अन्धकार द्वार,
खोले हुए महाकाल !

× × ×

इसी बीच मानव-समूह छोड़ देश निज,
छोड़-छोड़ वैभव अनंत—
सुविमूढ़ पथ।
कुछ था न ज्ञान उन्हें,
कुछ था न भान उन्हें,
हीन-मद, श्लथ-गर्व,
हीन रथ, लथ-पथ,
भागते से जा रहे थे,
रेंगते से जा रहे थे-
हार लिये जीवन की भार लिये वहनीय।
बालक थे, वृद्ध थे, जवान, बूढ़ी, रमणी भी,
लूले और लँगड़े थे, अन्धे और कुबड़े थे,
मानों शत-शत चाँद भूपर उतरकर,
कीचड़ से लथपथ,
भानुओं के साथ-साथ चलते अनिर्बाध।

मानों अपरूप, रूप,
रंक और साथ भूप,
मोतियों के साथ सीपी,
रेशम के साथ कीट,
उषा और अन्धकार,
छाया और प्रकाश-पुष्प,
कण्टक कुटिल कूट,

सौरभ औ' दुर्गन्ध,
मन्द-मन्द औ' अमन्द,
बिजली गहन घन,
पाप और पुण्य जैसे,
सत्य और झूठ जैसे,
बल और माया जैसे,
मृग की मरीचिका से,
भागे जा रहे थे सब !
सागर उमड़ता-सा देख पड़ता था तब—
मानव का—
दानव का—
दैन्य का, दुःखों का दल—
उदधि दुरन्त पथ
जलहीन, वस्त्रहीन,
अन्नहीन, छायाहीन,
मुक्तनभ, मुक्तकाल,
मुक्तभूमि, त्यक्त दैव,
साइकिल, पैदल औ' बैलगाड़ी घोड़ा गाड़ी,
मोटर पै रखकर बालक औ' साज सारा ।

कुछ जाते रेंगते से भग्नबल लक्ष्यहीन,
कुछ जाते चौंकते से, देखते से डरते से,
दौड़ दौड़ बढ़ा पैर,
खेतों, पगडण्डियों से,
सड़क, अपथ से ।
कुछ भी न सुध उन्हें,
कुछ था न ध्यान कोई,

भूल सब सम्मान,
भूल निज अधिकार,
भूल सब दुर्बल, निर्बल, बलवाले,
जा रहे थे रेंगते से सग-संग भग्नमन
सभी थे मलिन तन,
सभी थे मलिन मन,
भूताविष्ट प्राण जैसे,
त्राण-हीन रुद्ध-कण्ठ,

× × ×

जा रहा था उन्हीं में तो
एक वृद्ध, अति वृद्ध,
रमणी ले पुत्र वधू,
यौवन की दुन्दुभी-सी,
वारुणी-सी, चाँदनी-सी,
छवि-सा, अनंग-भार,
पति गया जिसका था,
त्याग घर युद्ध पर।
पति छवि, प्रेम पूत,
श्लथ बल श्लथ कान्ति,
भार लिये दोहद आधार प्रेम पूर्णिमा।
वृद्ध था शिथिल अंग,
अस्त-व्यस्त वस्त्र रंग,
और झुर्रियों का जाल·
निराशा का, दुःख का, मलिनता का,
व्यथा का विषाद भरे, जीर्णता का,
जरा का समस्त रूप।

भग्न-स्थिति, रुग्ण, व्यग्र;
त्रास की त्वरा की मूर्ति,
गठरी थी एक हाथ,
कुछ वस्त्र शेष भूति,
लकड़ी अपर हाथ,
टेकने को भूमि पर !
जरा जीर्ण भंग अंग,
चल कहाँ पा रहा था-
दौड़ना तो दूर रहा,
रेंगता-सा चल रहा,
वेग था हृदय अति,
शोक भरी पद गति !
और वह रमणी थी,
रति-रूप चित्रिका सी,
हास औ' विलास सब,
दया-शोक जर्जरी।

कोकिल के कण्ठ-स्वर-
साधना से भीगे हुए-
अग्नि से ज्वलित मानो-
एक हो सितार एक,
विश्व स्वर, रस भर, जीवन का श्रेष्ठ सार-झंकार लिये हुए
टूटा टूटा, भग्न-भग्न,
शृंखला विहीन-सा;
प्रियतम आगमन-आशा का,
प्रदीप लिये नेत्र में, हृदय—
प्राण प्राण में प्रकम्प भार।

दुर्वह शरीर भार,
जीवन से नग्न भग्न,
जोड़-जोड़ टूटे हुए,
अङ्ग-अङ्ग चूर-चूर,
डगमग-डगमग,
गिरते से दोनों जीव,
रेंगते सरकते से,
मन मन बोझ हुआ पैरों का अवहनीय।

आगे गये चले सब,
पास में न कोई गाँव,
पास में न कहीं जल,
पास में न कोई स्वर,
पास में न कोई नर,
कोई था कहीं न कोई,
नीचे भूमि-पथ हीन,
ऊबड़-सी खाबड़-सी,
पत्थरों से,
कंकड़ों से,
कंटकों से,
झाड़ियों से,
मोर्चों से,
टैंकों और गोलियों से,
रुँधी हुई, बिछी हुई,
भूधरों में,
मैदानों में,
कहीं-कहीं दिखती थी,

लाशों से पटी हुई ।
पथ-हीन, लक्ष्य-हीन !

× ×

ऊपर था सांध्य-रवि,
क्षितिज में डूबता-सा,
भाग्य लिये दोनों का ही,
और चला जा रहा था,
अपनी ही गति बाँध,
अपनी सुरति साध
जाने कहाँ डुबाने को
दोनों को दुरन्त हाय !
संध्या में छिपाये हुए
रजनी का अन्धकार
त्रास, भय, नीरवता,
कल्पना के यक्ष रक्ष,
भूत और दैत्य, दुष्ट
राक्षस न जाने कौन
कौन कौन छोड़ने को
भूतल गहन में ।
जहाँ तरु बोलते हैं,
नदियाँ भयावनी हैं,
सुनसान त्रास देता
भय उठता है जहाँ व्याप्त हो दिगन्त में ।

और ठूँठ होत नर
और नर भूत होते
बाहर भी अन्धकार

भीतर भी अन्धकार
अन्धकार तीव्र-धार
बढ़िया-सी भर भर,
रोम रोम अन्धकूप
जीवन को भर कर।

आ रहा था वह काल
आ रहा था महाकाल
धीरे धीरे, उठ-उठ,
रेंग रेंग लीलने को
सभी कुछ सभी शक्ति
सभी बल मन्द मन्द
घृणा, व्यंग, कटुहास
उपहास लिये हुए जीवन का मृत्यु मुख।

आ रहा था बढ़ा-बढ़ा चन्द्र-हीन रजनी का
अन्धकार खोल द्वार
किसी महाकाल का प्रचण्ड अट्टहास उठ,
मानों जग लीलने को और सब करने को-
तिमिरान्ध क्षण क्षण विश्व के प्रफुल्ल पल।
कितना है तुच्छ नर,
कितना अपंग जीव,
कितना है बल दर्प, काल के समक्ष हाय!
गिरि के समक्ष कीट बड़वाग्नि कण सम,
नभ के समक्ष एक तारिका हो जैसे लघु
पिण्ड—ब्रह्माण्ड में हो जैसे हेय, हीन शून्य।
आँखों का प्रकाश निरुपाय प्रभा-हीन हुआ।

बल हुआ दुर्बल स्थिति-वश दोनों जीव ।

× × ×

हारकर, थककर दोनों जन बैठ गये,
बैठ गये या कि गिर पड़े वे निढाल हो ।
पग पग मन के थे, भारी हुए रोम-रोम,
रोम-रोम चीखते थे पीड़ा के उदधि डूब,
क्लान्ति हुई पथ की अशान्ति से द्विगुणतर.
प्रसव की वेदना त्रिगुणतर, तरतम ।
वृद्ध भी शिथिल बल अभिभूत पथश्रम,
गत-मद-विभ्रम गिर पड़ा भूतल पै चेतना विहीन ठूँठ
ज्ञान था न उसे कोई, मान था न उसे कोई,
ध्यान था न उसे कोई, कहाँ वह कौन है ?
दोनों ही थे संज्ञाहीन, दोनों हुए माया-हीन,
दोनों ही थे डूबे किसी चेतना विचेतना के,
सागर में आशाओं की गठरी-सी बाँधे हुए ।

अन्धकार ऊपर था, अन्धकार नीचे भी था,
अन्धकार बीच में भी ।
कज्जल के जग उस । तिमिर के भव उस,
उठी नभ तारिका, गगन घन काकिनी सी,--
मानस अथाह वेदना में स्मय-रेख सी---
या कि मुक्त पल्लव प्रभुक्त
सब गौरव के तरु में अकेले एक, निकला हो फल एक--
दोनों ही थे मौन जन,
सब ओर नीरवता, एक ध्वनि आ रही थी,
सद्योजात बालक की, ह्याँ, ह्याँ, ह्याँ, ह्याँ ।

लुईसुई शेंकाई

(लुईसुई जापान की एक तरुणी है। वह तोकियो में काम करनेवाले एक चीनी युवक शेंकाई के सम्पर्क में आती है और प्रेम हो जाने के कारण बाद में उससे विवाह कर लेती है। दोनों का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। सहसा एक दिन जापान के चीन पर आक्रमण करने के समाचार ने उनकी सुख-शान्ति छीन ली। शेंकाई बड़े धर्म-संकट में पड़ा। एक ओर अपनी प्यारी पत्नी का प्रेम उसके मन और शरीर को बन्दी बनाए था और दूसरी ओर देश की पुकार उसे खींच रही थी। आखिर एक दिन रात को अपनी पत्नी और दोनों बच्चों को छोड़कर शेंकाई आक्रान्त चीन की ओर चल दिया। आगे क्या हुआ, यह नीचे की पंक्तियों में पढ़िएगा।)

धूम्र हीन धवल अमृत-सिक्त दीप-शिखा,
फुल्ल मालती अमन्द मन्द मन्द रस सिक्त मुक्तावल्लरी सी थी,
एक नारी; यौवन की पूर्णिमा, धम्मिल धन,
सुरति-प्रपंच शुभ्र,
अभ्रहीन शारदीया--
लुईसुई शक्तिमयी कामिनी जापान-मणि,
भामिनी कुतूहल की, मुक्ति जाति-बन्धन की,
देश की, समाज संस्कार-भार सब ही की।
किया गठबन्धन औ' स्नेह प्राण-भेद चीर,
चीन के नवीन प्रिय शेंकाई तरुण,
हृष्ट-पुष्ट, वज्रयष्टि मंजु कान्ति-पुञ्ज से ही।

यौवन के रस-से अनंग-रति दम्पती-से,
हृदय अभंग एक प्राण, एक कल्पना से,
एक श्वास, एक रस, एक मन, एक रूप

रहते थे;
सुरभि समीर से,
लता से तरु,
नदी जैसे तट से अम्बुधर चल दामिनी से;
प्राण जैसे आशा से,
हृदय युत साहस से।

बीतते थे दिन—
सुखराशि से विभोर और-
आशा से,
उमंग से,
उछाह से अथाह तल।
आते जान पाये नहीं, जाते जान पाये नहीं।

युग से प्रलम्ब,
किन्तु सुख हित,
मोद हित,
क्षण से अधिक अथ नश्वर अदुःख धन।
बीतती थीं रातें—
कहाँ बीतती सुहाग भरी!
यौवन की आग भरे आलिंगन-चुम्बन,
प्रणय-कल-केलि लिए,
प्रेम का सरोज लिए,
विकसित,
सुरभित,
मोदहित,
मदहित,

रतिहित
अतिरति, अतिगति, वक्रयति मंजु-मंजु !

बहती निखिल ऋतु एक घन प्रेम पूर,
आशा ले अनन्त, परिभाषा ले अनन्त,
किन्तु शान्त था न कुछ भी ।
कभी भी प्रिय बाहुलता-
वेष्ठित
अखण्ड अमरत्व-जैसा प्रति पल ।
वर्ष-वर्ष पल-जैसे —
बीतते थे दोनों के ही;
दोनों थे अभिन्न मन
दोनों अन्योन्यगत
दोनों प्रेम-लथपथ
वारुणी में मद-जैसे
लीन प्रिय प्रियतमा एक-दूसरे में अति ।

दो थीं, दो किरण
दो ही आँखें
औ' हृदय दो ही
स्नेह समुद्गार
ओष्ठद्वय के प्रमत्त स्मय
और दोनों नेत्रों की प्रसन्न सुख-निर्झरी-सी।
चपला अनंग-फेन
चंचल समुच्छ्वास
शैंकाई आता बरसात-सी हँसी की भरे
नित्य घर;

और था बिखेरता अमंद अट्टहास नित्य
शुभ्र मन-सैकत 'उ'
चिर-चिर-चिर-काल।

कहीं उच्चपद पर कार्य करता था वह
टोकियो में।
एक दिन,
एक साँझ,
कण्ठ तोड़,
स्वर जोड़,
घर-घर फटा स्वर,
बल और दर्प लिए टूटे हुए वृक्ष-जैसे अंधड़ का,
अम्बर से वज्रपात,
भूधर से विस्फोट,
हृदय में भरकर।
'रेकिट' था हाथ में ही
गुमसुम, चुपचुप
निष्प्रेम, निश्चल,
रुग्ण युग-युग का।
"क्या हुआ, हुआ क्या, कहो
प्रियतम,
मेरे प्रिय!"
लुईसुई कहने लगी, खिन्न उद्भ्रान्त, क्लान्त
भर दी गई हो
मानो वह्नि नस-नस में
अवश-विवश मति उत्तर के लिए व्यग्र।
"आज ही है जाना,

अमृत और विष

आज रात देश छोड़ देना ।
तुम्हें तज, शिशु तज, घर-बार ताना-बाना ।
प्रेम में है देश खड़ा—
—अचल, अटल फ्यूजीयामा जैसा
प्रेम से है देश बड़ा
आज ही है जाना प्रिये !
वज्राहत, तरुभ्रष्ट-लतिका-सी, यामिनी-सी,
मेघ की वितर्कना-सी, अश्रु-सी निरुद्ध नारी
चकित हुई-सी रुद्ध-कण्ठबद्ध बोली यों—
"क्या कहा ?
कहो न फिर,
कौन देश,
जाना कहाँ
मैं भी तो चलूँगी, सब ले चलूँगी—
हृदय-तरंगें दोनों
जहाँ तुम जाओ नाथ !
बोलो, कहाँ जाना होगा ?
चीर सब भ्रम-काई, बोल उठा शंकाई—
"देश से है युद्ध छिड़ा,
देश से है शत्रु भिड़ा ।"
"कौन शत्रु ?
जापान ?
किससे ?
महान चीन देश से ?
कब सुना ?"
आज ही तो, अभी-अभी,

इसीलिए जाना होगा,
तुम्हें प्रिये आज तज।

जय देश जय देश !"
"तो क्या यह प्रेम हुआ मेरी एक कल्पना ही,
शून्य की विभावना ही,
नश्वर विकामना-सा,
छेद्य
सुख-भेद्य हाय !
किन्तु प्रेम स्वर्ग-भूति
खण्डनीय नहीं, दमनीय भी नहीं है; प्रिय !
उस दिन अन्धकार
अन्धकार तीव्र धार
नदी थी बहाती जब
मुझे ही निगलती-सी
और तुम आ गए थे मेरे नव भाग्य बन,
नव जन्म, नव आशा, नव श्वास, नव भाषा सब
कुछ नव-नव
बनकर अभिनव।

तुमने बचाया लेके दृढ बाहुपाश मुझे
मृत्यु से हो और अपमृत्यु से सतत छीन।
आज यह भग्न होगा स्वप्न क्या अकाल में हो।
प्रलय-प्रकम्प बन और तोड़ कुसुमित कलिका को
वज्र से ही पीस देगा !
नहीं, तुम मत जाओ, मेरे प्राण छिप जाओ
उर में समाओ रोम-रोम की पुकार बन।"

लुईसुई सुन सिंहिनी-सी उठ दौड़ी तब
और जा के पहुँची वह गुप्त दूतावास में—
गई वहाँ, पकड़ाने हेतु
शत्रु मित्र शेंकाई को ही।
किन्तु वह तीर-सा गया था देश त्याग वीर
हाथ में न आया शत्रु, रह गई साँस तोड़।

× × ×

एक दिन, एक साँझ उड़ी शत्रु-देश पर
और बरसाने लगी बंब तथा गोले वह
अग्नि-सम धायँ-धायँ पल-पल शत्रु पर।
उस धुँआधार में, अनन्त अंधकार में था
नीचे वहीं एक बचा नष्ट होते-होते यंत्र
—वायुयान नाशकारी—
अग्नि-सी उगल रहा पल-पल यान पर,
गिर पड़ा वायुयान छिन्न-भिन्न, टूट-फूट,
तारक-सा वेग लिए, कुछ दूर वहीं पास।

चीनी वीर देख दौड़े ले प्रकाश मत्त मन
हर्ष से प्रमत्त मत्त महानद वारुणी-से
और देखा—रमणी थी एक वह,
काँप उठे प्राण एक सैनिक के देख यह,
वज्राहत, हत आशा, चकित भ्रमित मन
चीत्कारकर गिर गया उस शव पर,
बोलकर शेंकाई—"हाय, प्रिये लुईसुई,
हम मिले अन्त में अनन्त धाम-पथ-पर!"
मूक निर्वाक, अन्य देखते थे जन सब,
खड़े-खड़े, ज्ञानहीन, संज्ञाहीन प्राणहीन।

दलित

सूखी चमड़ी थी फाँकदार,
छाया नद का धूमिल कगार।
पिचका सा चेहरा म्लान रंग,
कंकाल अस्थिमय रंग भंग।

थी बरौनियों से हीन आँख,
बुझता अँगार ज्यों लिये राख।
भौंहों पर उगते कहीं बाल,
दिखलाते गड्ढे गहर ताल।

काली पीली सी दाँत पाँत,
धौंकनी चली सी हुई आँत।
किस गर्त छिपाये हुए प्राण,
कंकाल चिरन्तन काल गान।

जीवन में व्यापक यथा झूँठ,
जीवन सा नीरस वृक्ष ठूँठ।
कुछ जीवित सा कुछ मृत सा था,
कुछ काला, कर्बुर, सित सा था।

अपमान व्यथा से भरा हास,
उपवास निरन्तर और त्रास।
थककर अपने से गया हार,
शत बार चला पर रहा द्वार।

वह हाड़ों का झंखाड़ एक,
लम्बी काली यमदाढ़ एक।
ऊबड़ खाबड़ सा ठूँठ एक,
जीवन का कल्पित झूँठ एक।

जो आशाओं को पा न सका ;
जो आशाओं को ढा न सका ।
मानों ओढ़े वह मृत्यु खोल ,
आया अभाव का स्पष्ट बोल ।

सिर पर कूड़े का अवह भार ,
भीतर जीवन की अवह हार ।
शत शत छेदों का पहन कोट ,
जिसमें सीवन की नहीं ओट ।

उठ आया ठसका, उसी काल ,
डगमग डगमग, पग अभग डाल ।
गिर पड़ा वहीं रुक गई साँस ,
गिर पड़ी टोकरी वहीं पास ।

कुछ चले और कुछ रुके प्राण ,
कुछ हटी आ लगी गले जान ।
खाँसी से थर्रा उठा गात ,
पीछे से आकर लगी लात ।

गुम-सुम सी ठठरी हुई देह ,
प्रस्वेद बिन्दु से उठा मेह ।
आँतों से खिंचती हुई जान ,
थे होठ, फटे मुख कफ-म्लान ।

वह दलित, गलित, पीड़ित अपंग ,
गत साहस, गत आशा उमंग ।
मैले कूढे से स्नात गात ,
लथपथ मैले से हुए हाथ ।

वह घृणित, घृणा का महा पात्र ,
वीभत्स रूप वीभत्स गात्र ।
गरजा पीछे से काल दूत ,
वह जमादार का सुघड़ पूत ।

उठ, उठा कि सूअर गधे, नहीं,
खायेगा चाबुक और कहीं।
कह सड़ से मारा और खींच,
वह दुर्बल रोया आँख मींच।

बुड्ढे, कम्बख्त गधे, तुझसे,
होंगे न मिले तुझको मुझसे।
हड्डी हड्डी कर सभी चूर,
पूरूँगा तुझसे नरक घूर।

फिर एक लात दी जमा दौड़,
पर बुड्ढा कुसका तक न और
कहता ही जाता जमादार,
कर बीच बीच चाबुक प्रहार।

वह तो था जाने कहाँ गया,
पागल पाने क्या और नया।
वह भूला जीवन का प्रसार,
जिसमें—जग वैभव सुख विहार।

वह भूला उस क्षण भूख राग,
जिसकी बुझ पाई नहीं आग।
वह भूला जीवन प्राप्त हार,
वह भूला दुर्वह तनय भार।

भूला लड़की का चीत्कार,
भूला रुग्णा दयिता पुकार।
जो बिना पथ्य औषध उपाय,
महिनों कराहती रही हाय।

मर गई अंत को बिना पथ्य,
क्या इससे उज्ज्वल कहीं सत्य!
भूला निज छिदरी गिरी छान,
नित भंख लोटता जहाँ आन।

गरमी सरदी का कुछ बचाव—
है नहीं जहाँ कोई रुकाव।
गरमी वर्षाएँ दौड़-दौड़—
करतीं कुटिया से नित्य होड़।

वह पड़ा हुआ था निराधार,
वह पड़ा हुआ था भूमि भार।
जुड़ गई भीड़ यह देख हाल,
थे दूर खड़े कुछ युवा बाल।

कुछ हँसकर करने लगे व्यंग,
कुछ घृणा दिखाते संग संग।
कुछ गाली देने लगे भले,
मुँह नाक चढ़ा कुछ गये चले।

था खड़ा मौन वह जमादार,
मुख-म्लान, गर्व-हृत, गत-विकार।
कुछ बोले कैसा ढीठ अरे,
है बना हुआ है रूप धरे।

कुछ बोले कैसा घृणित दृश्य,
है इसीलिये यह नहीं स्पृश्य।
क्यों नहीं उठाता जमादार?
क्या देख रहा है बार बार?

है फटी जा रही अरे नाक!
जाने क्या पागल रहा ताक।
सुन सुना कहीं से इसी बीच,
आया सुत उसका वहीं नीच।

देखा यह उसने पड़ा बाप,
पापी समाज का दीर्घ शाप।
गिर पड़ा बिलख उस पर अजान,
पिघले रोना सुन वज्र-प्राण।

पर सभी मूक थे वहाँ खड़े,
कुछ दूर किन्तु थे रहे अड़े।
बुड्ढे को आया तभी होश,
कुछ हिला डुला कुछ उठा घोष।

यह देख देख कर भीड़ भाड़,
घबराया दुर्बल वस्त्र झाड़।
सहमा, पर पीड़ा-पूर्ण गात,
कर सका न कोई कहीं बात।

फिर खींच आह, पीड़ा अशेष,
संचित कर साहस बल विशेष।
फिर उठा टोकरी लिये हाथ,
गिर पड़ा खँडर सा साथ साथ।

था खड़ा मूक वह नर समाज,
कर्तव्य-मूढ़ तज काम काज।
विद्युत की गति से भीड़ छेक,
आगे बढ़ आया युवक एक।

कर साफ दलित का सब शरीर,
ले चला गोद में भीड़ चीर।
गृह-द्वार लिटाया खाट डाल,
वह पड़ा रहा बेसुध निहाल।

उपचार किया भरसक महान,
कुछ पिला दूध, दे दवा दान।
हुंकार उठा यह लख समाज,
आया कलियुग क्या सही आज!

विलम्ब

मैं रहा ध्यान में कविता के कालिज जाने को हुई देर!

पहनी कमीज, पर बटन-हीन, पतलून उठाई वह नवीन।
मैं लगा रहा था खूब जोर, वह खुल जाती बँध पोर पोर।
फिर बाँधी मैंने खींच खींच, निश्वास खींचकर आँख मीच।
पर नहीं बँधी यह नई विपद, मैं रहा सोचता कविता-पद।
औ' उधर घड़ी टिक टिक करती, पतलून न पर धीरज धरती।
फिर टूटा बटन एकदम से, मैं बैठा कुरसी पर धम से।
पत्नी ने देखी बेचैनी, झाँकी पर्दे से मृदुबैनी।
हँस कहने लगी कि यह है क्या? पतलून तुम्हारी है यह क्या?
फिर मेरी है पतलून कहाँ, लाकर दी फौरन रखी जहाँ।
मैं भूल समझकर निपट झपट, तैयार हुआ फिर की न देर।
मैं रहा ध्यान में कविता के कालिज जाने को हुई देर!

मोजे न मिले गेटिस न मिला, खाली तस्मे का बूट मिला।
मालुम हुआ छोटे नवाब, तस्मा निकाल ले गए साफ।
बिन तस्मे के ही बूट पहन, कैसा पग पग पर नया ग्रहण।
फिर दौड़ा सिर पर पाँव धरे, कैसे पहुँचूँगा आज हरे।
हो गई देर हो गई देर, कहते मिलते आँखें तरेर।
घोड़े ये दौड़ रहे पथ पर, झागों से भीगे हुए अधर।
ताँगे वाले भी मार मार, ताँगों को दौड़ाते अपार।
थे दौड़ रहे साइकिलसवार, टकराते बचते बार बार।
मोटर घर घर जा रही चलीं, रुकती न झिझकती भली भली।
सब दौड़ रहे ये पथचारी, अपनी गति ले न्यारी न्यारी।
भर प्राण अंग भर नव उमंग, चलते मशीन से संग संग।
कुछ कदम चल रहे पकड़ हाथ कुछ आगे-पीछे साथ-साथ।
अपनी-अपनी नव सृष्टि बना, अपनी-अपनी नव दृष्टि बना।
अपनी-अपनी चिन्ताएँ ले, अपनी-अपनी आशाएँ ले।
कुछ गाड़ी में पैदल-पैदल, फुटपाथों पर चिन्तित चंचल।

अमृत और विष

कुछ रविशों पर कुछ बागों में, पगडण्डी पर कुछ ताँगों में।
कुछ भार लिये पिसते-पिसते, कुछ जीवन में घिसते-घिसते।
कुछ रोगग्रस्त कुछ जरा-भस्म, कुछ विकल व्यस्त चिंतित समस्त।
निशि के सपने सब भूल भाल, आगे की चिन्ता में बिठाल।
कुछ भुला डालने को जग-दुख, कह रहे जोर से राम राम।
अटपटी चाल लप झप लप झप, चल रहे दुआ लेकर सलाम।
कुछ शिथिल शिथिल कुछ वेग लिए, कुछ दौड़ रहे उद्वेग लिए।
मैं रुका देखने लगा दृश्य, चिन्तन में आँखें फेर-फेर।
मैं रहा ध्यान में कविता के कालिज जाने को हुई देर!

कुछ दया धर्म के पैगम्बर, ठहरी जिनपर धरती अम्बर।
कहने को जिनमें महा सत्य, कहने को जिनमें अमृत पथ्य।
चींटी को बचा पैर रखते, गौओं को खिला पेट भरते।
वे भक्त प्रवर ले व्याज प्रखर, जो चूस रहे अन्तर अन्तर।
जो खोल मिलें धन कमा रहे, कर नए काम धन कमा रहे।
वे मानवता के रुद्र रूप, खूनी आँखों के नव स्वरूप।
नव आकर्षण के जाल लिए, नव कतर-ब्यौंत की चाल लिए।
सब भाग रहे सब दौड़ रहे, पीछे का सब पथ छोड़ रहे।
पृथ्वी नव गति ले रही भाग, घड़ियाँ घण्टों के शब्द दाग।
पूरब पश्चिम भी दौड़ रहे, उत्तर में जीवन छोड़ रहे।
इस दुनिया में कितनी हलचल, कितना स्थिति में संघर्ष प्रबल।
संघर्ष भरी कितनी शिशुता, संघर्ष भरी यह मानवता।
संघर्ष भरा कितना यौवन, संघर्ष भरा कितना जीवन।
हर सुबह जगत चलने जाता, हर साँझ लौटकर घर आता।
यह चलना है कि नहीं थकता, वह चलना है कि नहीं रुकता।
बचपन के आगे यौवन है, यौवन से सटा जरा धन है।
आँखें खुलते ही सुबह चली, जाकर संध्या में घुली मिली।
मैं इसी तरह चलता रहता, मैं इसी तरह गलता रहता।
फिर पैरों में गति नई हुई, सब नाप नाप कर वस्तु नई।
फिर जल्दी जल्दी कदम बढ़ा, सोचता चला मैं यही हेर।
मैं रहा ध्यान में कविता के कालिज जाने को हुई देर।

नर्तकी

अभी अभी कल ही तो बैठा हुआ स्टूडियो में—
देखता था 'शूटिंग' और देखता निमंत्रित हो—
रंग ढंग वहाँ के ही—
नये नये वस्त्रों और भूषणों में जन नये,
अंग अंग में उमंग, अंग अंग नव अनंग,
आ रहे थे पात्र सभी अपनी ही शान लिये,
मान लिये रूप का, निखार का, उभार का भी
और जो समझते थे तुच्छ अति तुच्छ जग।
जगत के प्राणियों को, प्राणियों के प्राणों को
प्रकृति को, मानव को, चेतना को,
व्यक्ति के अहं मुग्ध डूबे हुए गरिमा में
अभिनय प्रदीप्त मान।

इसी बीच ज्ञात हुआ 'नृत्य होगा—नृत्य होगा' :
गूँज उठी चहुँ ओर ध्वनि घोर आस पास
लोग सब बैठ गये भोग मान दप्त-दृप्त
धूम नाचने लगा था वहाँ श्वास वाही उड़—
चक्रबद्ध,
चक्रबद्ध बैठे जन ऐंठे हुए सट सट
आँखें मन सेकने को,
प्यास भी बुझाने मानो प्रलय की आग भरे,
रोम रोम चेतना में,
औत्सुक्य, अभिलाषा,
लालसा में, वासना में भरे हुए प्राण प्राण।

इतने में आई एक किन्नरी कुतूहल सी—
लपझप, लकदक,
ज्योति पुंज, काम कुंज
घुँघरू बजाती हुई, काम दामिनी सी गति,

छवि के अनंग मार
सकुचाती, शरमाती,
नाचने को खड़ी हुई ;
सूत्रधार, स्वरकार, शब्दकार वादक भी ;
तबला, सितार, दिलरुबा, औ' सारंगी लिये
वायलिन, बंसरी, क्लेरोनेट, मंजीर,
हारमोनियम और जलतरंग आदि युक्त
बैठे थे सन्नद्ध बद्ध पंक्तियों में सटे हुए
ताल पर ताल देने, गति रस भर देने
और गुँजा देने को समस्त विश्व; कला द्वारा
नृत्य द्वारा नर्तकी के—
जिसकी चरण गति मति से प्रकंपित हो,
गन्धवाह झूम उठे, चूम उठे, कुसमालि कलिका
वसंत केलि ।

नर्तकी भी—
स्वर्ण की छड़ी सी शुभ्र कांतिवाली
बाल रवि अंशु सी सुरेखा में तरंग भरी
अंग अंग दीप्ति सनी
रंग, रूप यौवन की, वारुणी की, वासना की,
कामना कल्लोलिनी सी ।

आके वह खड़ी हुई ;
पाते ही संकेत स्वर, ध्वनि आई गति बन,
घँघुरू भी बज उठे अंग विक्षेप संग,
छम, छम, छम, छम,
छनन, छनन, छन, छम, छम, छम;
झूम झूम झूम, झूम, भूमि चूम, नभ चूम,
गति, छम, स्वर छम, लय छम, ताल छम,
मूर्छना, विमूर्छना, प्ररोह, अवरोह छम,
भरती थी ध्वनि छम, छम, छम, छम, छम,

मानों वायु गई जम, हृदय की गति थम,
विरति में छम छम, रति यति छम ।

स्वर्ग का कुतूहल उठाती वह एक कर
दूसरे में भूगोल घूमता था बद्ध चक्र
बादलों को बाँधे हुए
बाल बाल नाग-पाश ।

दामिनी दमकती थी, चमकाती कालकूट
काल कूट घट द्वय सुधा से न्हिलाये हुये ।

हिल हिल तार से नुकीले अर्ध नग्न कुंभ
दे देने को तन मन,
दृष्टि वृष्टि, प्राण प्राण दर्शकों के ।

तारकों की माल डाल रवि-शशि चक्षु-द्वय,
मेघों के डमरू कर नाचती थी नारी वह ।

एक एक भावना थी प्राण भेदने को पुष्ट
अंग अंग विक्षेप, क्षेपक सा जीवन का
सुधा स्यंदि झरिणी सा झर झर बह रहा ।
दर्शक थे झूम रहे, झूम रहे कल्पना में
जाने किस किस बीच,
संग संग मग्न मन
लक्षित उदग्र अति ।

× × ×

गति हुई काल की निस्तब्ध मौन,
मूक, जड़,
यति हुई वायु में सुरति पद गति अति ;
मानों नृत्य करती हो दामिनी दमक रुक,
बादलों में घूम घूम, वेग लिये प्राणों का,
हृदय मृदु स्पंदन का ।

कभी रुक जाती गति अंग अंग भंगिमा में
यौवन की गरिमा में
उदग्रीव रूप राशि,
सागर में स्थिरता के काँपती सी लघु लघु लहर सुमंद मंद,
और मृदुरोम, हर्ष, पुलक प्रसाद दीपशिखा मानों एक।
आँचल छिपाती हुई, आँखों में बसाती हुई
नत नत, उन्नत, ऊर्ध्व-दृष्टि अधो-दृष्टि,
लोच ले कपोती की ग्रीवा सी
निरभ्र, शुभ्र, कुसुम समान यष्टि,
स्पष्ट सी महान पूर्ण।

दर्शक भी झूम उठे पीते हुए नेत्रों से
रोम राजियों से रस
ऐसी तन्मयता थी—स्वर और ताल की भी
जैसे पद विह्वल की गति मद तन्मय हो
संज्ञा ज्ञान गरिमा को,
समर्पण कर देती छीन कर सुध बुध।

देखते थे जन सब उस रूप यौवन को
यौवन की प्रतिमा को, रति को अनंग सम।

देखते हों उर्वशी को शत शत पुरुरवा,
एक दृष्टि, एक गति, एक गति स्पन्दन की
एक ही था उनका समान वेग, उद्वेग।

× × ×

किन्तु मैं तो देखता था कोयों के नीचे घन —
कालिमा में छिपी हुई मूक वेदनायें औ' विवशतायें
नारी की ;
जिनमें था आडम्बर ; कृत्रिम विलास छवि,
कृत्रिम विभाव को बनाये रखने का भाव
रोते हुए हँसने का,

पीडा में सुख-स्वप्न मानते ही रहने का
और निज अङ्ग अङ्ग प्राण प्राण भर कर
सौन्दर्य, हावभाव, क्रीडा केलि द्वारा
सब जीवन की कटुता को हास में बदल कर,
दबाकर सत्य को अशांति को अभावों को भी,
प्राणों की प्रवंचना में वाह्य तर जीवन में।

निज को समर्पण करना ही होता जिसे
असमय, कुसमय, इच्छा से, अनिच्छा से भी
निज सुख सौन्दर्य, निज मन, निज तन
घुट घुट रो रोकर, आँसुओं को पीते हुए
उन नर राक्षसों के सम्मुख जब तब;
मुख पर खेलती है सदा अश्लीलता ही
और सुरा गंध से भी जिनका है ज्ञान अंध

रमते जो रौरव के कीट सम झूठ में जो,
छल में, प्रवंचना में,
विस्तृत गद्यसम
सार्थ पर अर्थ हीन;
जिन्हें बस, रुपया है शुभ्र सत्य सर्वाधिक
और जो न चूकते हैं हिंसा पाप करने से
कोई भी न पाप जिन्हें कोई भी न शाप जिन्हें
खेलता है मुख पर हास औ' विश्वासघात
झूठ है जिन्हें न कुछ, सत्य है जिन्हें न कुछ
केवल है ध्येय एक आत्मतृप्ति, मनतृप्ति
पाप के इशारों पर नाचती थी स्वर्ग छवि।